तीन शीर्ष भारतीय संस्थान जिन पर तुरन्त ताला लगा देना चाहिये

सुप्रीम कोर्ट, पीएमओ, संसदः जरूरत है तीन तालों की

इससे यदि कोई चौंकना चाहे तो उसकी मर्ज़ी। हमारी राय में सुप्रीम कोर्ट, पीएमओ, संसद, तीन ऐसे संस्थान हैं जिन्हें जनहित में तुरन्त बन्द कर देना चाहिये। पहले सुप्रीम कोर्ट। 22 वर्ष जेल में बिताने के बाद एक नागरिक को निर्दोष पाने पर बरी किया गया। 1984 के सिख-संहार के मुख्य कर्ता-धर्ताओं में से एक सज्जन कुमार का फ़ैसला आने में ही 30 साल लग गये और वह भी बरी करने का। हज़ारों को मौत के घाट उतारने वाले और कितनी ही पीढ़ियों को अपंग बनाने वाले भोपाल-गैस कांड के मुख्य अभियुक्त एंडरसन को 20 साल बाद भी अमेरिका से अदालती कार्यवाही भुगतने के लिये लाया नहीं जा सका है। साम्प्रदायिक दंगों में हज़ारों निर्दोष नागरिकों को मौत के घाट उतारने वाले शीर्ष राजनीतिज्ञों में से एक को भी जेल में नहीं डाला जा सका है।

स्वयं सुप्रीम कोर्ट में काम करने वाली महिला वकीलों को यौनिक एवं लैंगिक शोषण का सामना करना पड़ रहा है, हाई कोर्टों तथा ज़िला अदालतों में तो यह रोग संक्रमणकारी बन चुका है। समय-बद्ध काम निपटाने को लेकर जैसी उश्रंखलता सुप्रीम कोर्ट के जजों में है वह ऐसे जजों द्वारा सालों साल तक जांच-आयोगों का काम खींचे जाने में लक्षित होती है। 'कानून के समक्ष सबकी बराबरी' की रोज़ाना कसमें खाने के बावजूद पूरी न्याय-व्यवस्था गैर-बराबरी का जीता जागता नमूना है, जहां पैसे के दम पर ही न्याय मांगा और पाया जा सकता है। यही सब रोकने की जिम्मेदारी सुप्रीम कोर्ट की है। लिहाजा यदि इस पर ताला लगा दिया जाय तो जन साधारण को क्या फर्क पड़ेगा? जिला अदालतें अपनी तरह चलती रहेंगी और तमाम उच्च न्यायालयों में उनकी अपीलें बदस्तूर झूला झूलती रहेंगी।

आइये प्रधानमंत्री कार्यालय को देखें। प्रधानमंत्री कार्यालय का काम अन्य मंत्रालयों को नेतृत्व एवं मार्गदर्शन प्रदान करना होना चाहिये। यह कार्यालय जनता में प्रजातांत्रिक पद्धति की सरकार के प्रति विश्वास पैदा करने के लिये भी उत्तरदायी होता है। संविधान के अंतर्गत ली गई शपथ के चलते उसे अपने नीतियों एवं फैसलों को गोपनीयता के दायरे में भी रखना होता है। इस कार्यालय को तमाम अन्य मंत्रालयों के काम-काज में शुचिता सुनिश्चित करने की महत्वपूर्ण जिम्मेदारी ही निभानी होती है।

प्रधानमंत्री कार्यलय के मुखीया यानी प्रधानमंत्री को पार्टी सांसदों के बहुमत का समर्थन होना चाहिये। साथ ही वह एक ऐसा व्यक्ति होना चाहिये जिसने जनता का विश्वास लोकसभा का चुनाव जीत कर प्राप्त किया हो।

आज भारत में एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं मिलेगा जो उपरोक्त पैमानों में से एक पर भी मनमोहन सिंह या उनके कार्यालय को खरा उतरने का प्रमाणपत्र दे सके। सारे मंत्रालयों में खुली लुट मची है। किसी को मनमोहन सिंह का मार्गदर्शन नहीं चाहिये, नेतृत्व तो उनके पास कभी था ही नहीं। एक मात्र लड़े लोकसभा चुनाव में उन्हें मुंह की खानी पड़ी थी। उनकी सत्यनिष्ठा का हाल ये है कि संविधान की कसम लेने के बावजूद न वे पीएम पद की गोपनीयता रखते हैं और न उस पद-अनुरूप निर्णय लेते हैं। सारे निर्णय 10 जनपथ यानी सोनिया गांधी के दूतों द्वारा उन तक पहुंचते हैं। प्रधानमंत्री कार्यालय में राज्यमंत्री नारायण-सामी और प्रधान सचिव, दोनों सानिया गांधी द्वारा बैठाये प्यादे हैं जो फाइलों को उसी रूप में निकलवाते हैं जिसमें सोनिया चाहती है।

ऐसे में प्रधानमंत्री कार्यलय के होने न होने का क्या औचित्य है? इसके होने से केवल फाइलों के आवाजाही में कुछ दिन और जुड़ जाते हैं यहां ताला लगाकर फाइलें सीधे 10 जनपथ ही भेजी जायें तो उतना वक्त और खर्चा तो बचेगा। बाकि जनता के मतलब का न तो अब कुछ हो रहा है न तब कुछ होगा।

अब लिजिये संसद को। यहां पर हर वह कार्यवाही बड़ी दिलचस्पी से की जाती है जिसके लिये संसद नहीं बनी है। मसलन, धरना, प्रदर्शन, शोर-शराबा,गाली-ग्लौज, कार्य-ठप्प इत्यादि -इत्यादि। जनता के मतलब की बातों पर चर्चा के लिये न तो आज के सांसदों में क्षमता है और न उनकी नीयत जनपक्षी है। तकरीबन आधे सांसदों पर तो आपराधिक मुकदमें चल रहे हैं। लगता है जैसे सत्ता-पक्ष एवं विपक्ष मिली भगत की नूरा कुश्ती में लगे हुए हैं- जीयो और जीने दो की तर्ज पर। रचनात्मक और गुणात्मक जैसे शब्दों से सारे ही अछूते नज़र आते हैं यदि किसी को सकारात्मक प्रेरणा लेनी हो तो उसे संसद के बजाय शायद कूड़े के ढेर से ज़्यादा मिलने की संभावना होगी।

ऐसी संसद के सुरक्षा के नाम पर सैंकरो करोड़ रुपये खर्च किये जाते हैं।

ऐसी संसद की सुरक्षा के नाम पर सैंकडों करोड़ रुपये खर्च किये जाते हैं। ऐसे सांसदों पर वेतन, भत्ते, यात्रा व्यय, आवास, चिकित्सा, स्वेच्छा निधि के नाम पर हज़ारों करोड़ अलग से खर्च होता है। स्वयं संसद की प्रशासनिक व्यवस्था एवं परिसर के रख रखाव का बजट भी सैंकड़ों करोड़ में है।

क्या ऐसे सफ़ेद हाथी को पालना जरूरी है? संसद पर ताला लगा कर तमाम सांसदों को अपने-अपने पैतृक घर से काम करने की छूट देने से भी वही हासिल हो सकता है जो आज हो रहा है। बस उन्हें कम्प्यूटर से जोड़ दीजिये। सवाल है कि भारत के नागरिक ऐसे तीन मज़बूत तालों को जुटाने की हिम्मत कब दिखाने लायक हो पायेंगे?

-ब्यूरो

तुर्की-ब-तुर्की

राहुल गांधी,
कांग्रेसी युवराज

''चुनाव आने पर कार्यकर्ताओं की याद आई। अब तक हमें कोई पूछता नहीं था''

''कार्यकर्ताओं को पूरा सम्मान दिया जायेगा। मैं इस विषय को स्वयं देखूंगा।''

(राजस्थान में चुनाव की तैयारी के दौरे पर गये राहुल गांधी से कांग्रेसी कार्यकर्ताओं का वार्तालाप।)

हमारा कहना है

- कांग्रेस में कार्यकर्ता? इस पार्टी में हाईकमांड के बाद मैनेज़र, बिचौलिये, दलाल और निहीत स्वार्थ भुनाने वालों का जमावड़ा ही बचा है।
- वैसे तो हर राजनैतिक पार्टी का एक जैसा हाल है। जिनके भी कार्यकर्ता न पूछे जाने की शिकायत करते हैं, उनका एक मात्र मतलब होता है कि उनकी घुसपैठ लूट के दायरे में नहीं हो पा रही।
- 'कार्यकर्ताओं' को 'सम्मान' देने का मतलब होता है कि उनकी हैसियत के अनुसार उनकी कमाई के दरवाजे खाले जायें। तबादले करवाना, नैकरियां लगवाना सरकार में रुके पड़े काम निकलवाना, मन्त्रियों-अफ़सरों की दलाली करना, उद्योगपतियों-व्यवसायियों से वसूली करना, इत्यादि इत्यादि।
- प.बंगाल में दशकों चली सीपीएम के नेतृत्व वाली सरकारों ने अपने कार्यकर्ताओं के 'सम्मान' की प्रणाली बहुत मजबूती से कायम कर रखी थी।
- स्थानीय पार्टी दफ़्तर की घुग्गी लगे बिना न थानों में मुकदमें दर्ज होते थे और न तहसीलों में कोई काम होता था। यही नियन्त्रित प्रणाली सैंकड़ों गुणा बड़ी लूट के साथ, पंजाब में सुखबीर बादल ने भी अपनाई है। अनियन्त्रित रूप से कमोबेश 'कार्यकर्ताओं' का ऐसा ही 'सम्मान' अन्य तमाम पार्टियों की सरकारों में भी चलता है।

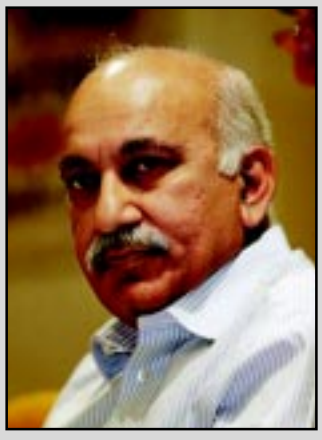

एमजे अकबर, राजनैतिक चिंतक एवं टिप्पणीकार

''एक में संभावना नहीं और दूसरा संभव नहीं''
(राहुल गांधी एवं नरेन्द्र मोदी की पीएम पद पर दावेदारी के संदर्भ में की गयी टिप्पणी)

हमारा कहना है

- जिनमें संभावना है और संभव है, उन्होंने क्या तीर मार लिये? जनता की ऐसी तैसी करने में, सारे तन्त्र को धन्ना सेठों के पास गिरवी रखने मे, अपनी और अपनी सात पुश्तों की झोलिया भरने में, रोज झूठ पाखंड-शोषण के सहारे कुर्सी की लड़ाई लड़ने में, तरह तरह के विभाजनकारी मुद्दों को जनता के बीच उठा कर अपना उल्लू सीधा करने में, योजनाओं एवं राजकीय कोषों को निहित वर्गों के हित-साधन का औजार बनाने में जो सबसे आगे हैं- मनमोहन व मोटेक चिदम्बरम व प्रणव मुखजी, कपिल सिब्बल व सलमान खुर्शीद, अश्वनी कुमार व पवन बंसल, अटल बिहारी व प्रमोद महाजन, अरुण जेटली व सुषमा स्वराज, इत्यादि इत्यादि इत्यादि...

जब राहुल गांधी के पिता राजीव गांधी और उनकी दादी इन्दिरा गांधी प्रधानमंत्री पद पर बैठे तो उन्हें लेकर भी लोग हंसा ही करते थे। लिहाज़ा राहुल गांधी को अपवाद कैसे माना जाये। इसी तरह नरेंद्र मोदी का दावा भी खारिज कैसे किया जाये?

लालकृष्ण आडवाणी द्वारा की गयी राम-मन्दिर यात्रा (80 का दशक) के दौरान मुसलमानों के विरुद्ध उगले ज़हर के बावजूद, एक संकीर्ण साम्प्रदायिक कट्टर हिन्दूवादी छवि वाले लालकृष्ण आडवाणी यदि लगातार प्रधानमंत्री पद की दौड़ में शामिल रह सकते हैं, तो मोदी क्यों नहीं? मोदी ने तो केवल एक ही राज्य में मुस्लिम नरसंहार को जामा पहनाया है। आडवाणी, जिन्ना की मजार पर जाकर अपने कर्म धो आये थे। अब मोदी 'कुछ गतितियां हुई है' कह कर अपने कर्म का फ़ल बदलने की फ़िराक में हैं।
अकबर साहब आप टिप्पणीकार तो बड़े हैं पर राहुल गांधी और नरेन्द्र मोदी 'बड़े' बनेंगे क्योंकि उनके मुकाबले जो लोग हैं वे भी जनता के किसी मतलब के नहीं।